सॉरी

जिंदर

सॉरी

सॉरी... सॉरी... सॉरी...

https://www.hindiadda.com/sorry/

चीखने के सिवाय मेरे पास कोई दूसरा चारा रहा ही नहीं था। मुझसे यह बर्दाश्त नहीं हुआ था। आख़िर, कहने-सुनने की भी कोई सीमा होती है। नहीं-नहीं। इसे मेरी कमजोरी नहीं कहा जा सकता। बुजदिली भी नहीं। इतनी जल्दी कोई कैसे निर्णय ले सकता है। मुमकिन नहीं। बिलकुल नहीं। हो ही नहीं सकता। मैं नहीं मानता। निर्णय लेना कोई गुड्डे-गुड़िया के विवाह जैसा नहीं होता। सोचना पड़ता है। विचारना पड़ता है। विचरना और विचारना। दोनों ही समझो।

उस दिन न तो मैं सोचने के मूड में था, न ही विचारने के। फुर्सत में था। कोई ख़ास काम नहीं था। कहीं जाने का कोई प्रोग्राम नहीं था। मन शांत था। घर में सुख-शांति हो, दफ्तरी काम ठीकठाक चल रहा हो तो नींद बड़ी गहरी आती है। चित्त भी ठिकाने सिर रहता है। गाँव गए दो-ढाई महीने हो गए थे। गाँव में से भी कोई आया-गया नहीं था। नवंबर के अंतिम दिन थे। ठंड कोई अधिक नहीं थी। धूप में बैठना और वह भी सवेरे-सवेरे अच्छा लगता। लोई लपेटी, चढ़ती धूप की गरमाहट महसूस होती। शनिवार था। मैं अख़बार लेकर छत पर आ गया। हमारे वाली लाइन के क्वार्टरों के पीछे खेत पड़ते थे। हरियाली से भरपूर। मंद-मंद बहती हवा में सरसों के आधे-अधूरे खिले फूलों की खुशबू मिली हुई थी। एक तरह का नशा बाँटती हुई। मेरे सामने दूर तक खेत फैले हुए थे। मैं क्वार्टरों की तरफ पीठ करके मुंडेर पर एक पैर टिकाकर खड़ा था। कह लो या समझ लो - लुत्फ़ ले रहा था। इस समय आदमी कुछ नहीं सोच सकता। बस, देखता है। देखे ही जाता है। कुदरत। हरियाली। मेरी स्थिति कुछ ऐसी ही थी। मैं छत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाता। गर्दन झुकाए ही लौट पड़ता। सामने फैली ख़ुशबू ने मुझे अपने आगोश में ले रखा था। भरपूर आनंद। कितने सालों से मेरे अंदर जमा हुई चमड़े की बदबू पर यह भारी हो गई। हवा में समोई इस ताज़गी ने मुझे आसपास की सुध नहीं रहने दी थी।

"लद्धड़ साहिब, मार्निंग वाक हो रही है?" दाईं ओर से शर्मा ने आकर पूछा।

"बस यूँ ही...।" मेरी उसकी तरफ पीठ थी।

"सीधा कहो न, ताज़ी हवा का मज़ा ले रहे हो।"

मैं इसे पसंद नहीं करता। यह बहुत बातूनी है। एक बार कोई बात शुरू कर ले, फिर इससे पल्ला छुड़ाना बहुत कठिन। कई बार मैं हुंकारा देने से भी हट जाता। इसे इससे फर्क़ नहीं पड़ता। इसके लिए इतना ही काफ़ी होता है कि मैं इसके पास खड़ा हूँ।

आज फिर मैं इसकी गिरफ़्त में आ गया।

"लो जी, ये जो डी.एस. फोर की सेना बन गई है न, यही... काशी-मायावती वाली... इसने जात पात की दूरी और बढ़ा दी... लोग जात पात भूल बैठे थे, पर यह जो वोटों की राजनीति है, यह अपनी चालें चलती रहती है। तुम पूछो, कैसे? मैं तुम्हें अपने दफ़्तर की एक घटना...।"

शर्मा की बात का सिरा आगे बढ़ता कि तभी बणवैत के क्वार्टर की ओर से शोर उठा। यह शोर कभी ऊँचा हो जाता, कभी मद्धम। मैं और शर्मा मुंडेर के पास आकर खड़े हो गए।

"एक बार फिर कह तो..." बंती शेरनी बनी बार बार यही कह रही थी। मैंने उसे कभी इस तरह गुस्से में नहीं देखा। अपने क्वार्टर के सामने खड़ी वह झाड़ू लेकर मिसेज सिंह की ओर तेजी से जाती। करीब तीन फुट का फ़ासला रखती। फिर जहाँ पहले खड़ी थी, वहीं लौटकर आ खड़ी होती। जैसे आगे कोई लक्ष्मण रेखा खिंची हुई हो, जिसे न तो मिसेज सिंह और न ही वह पार करना चाहती हो। कलपती-बोलती की चुन्नी का एक सिरा धरती के साथ घिसटने लग जाता। चुन्नी को ठीक करते हुए उसका गुस्सा सातवें आसमान पर जा चढ़ता।

मैं हैरान था कि बहुत ही धीमी आवाज़ में बोलने वाली बंती का कड़ कैसे फट गया था।

"एक बार क्या, मैं तो सौ बार कहूँगी... तेरा लड़का चोर...।" मिसेज सिंह ने फिर पलटकर जवाब दिया। वह अपने क्वार्टर के आगे लगाई सब्ज़ी की क्यारियों से दो फुट आगे खड़ी थी। दाएँ-बाएँ उसके बच्चे खड़े थे। वे उसे बार बार आगे बढ़ने से रोकते। चुपचाप। ऐसा लगता था मानो वे उसकी हिफाज़त के लिए खड़े थे। न तो वे यह चाहते थे कि उनकी मम्मी बंती के साथ हाथापाई करे। न ही बंती को इस तरफ आने देना चाहते थे।

छुट्टी का दिन था। मिसेज सिंह के पास कोई काम नहीं था। वह ब्रेक-फास्ट कर चुके थे। बच्चों को स्कूल वाली वैन ने ले जाना था।

"देखो भाई साहब, ये जो निक्कर इसके कुछ लगते देसे ने पहन रखी है ना, ये मेरे जसपाल की है।" मिसेज सिंह ने समीप आ खड़े हुए बणवैत को बताया।

"क्यों झूठ बोलने पर तुली हो। यह तो मैं पिछले इतवार साइनपाइल सिनेमा के पास लगी सेल में से पंद्रह रुपये की खरीदकर लाई हूँ। अगर मेरे कहने पर एतबार नहीं तो अभी चल मेरे संग। वहाँ अभी भी सेल लगी हुई है।" बंती ने अपनी सफ़ाई दी।

"कुत्ती! रब को जानदेणी...।" मिसेज सिंह हाँफती हुई बोली।

मिसेज सिंह के 'कुत्ती' कहने की देर थी कि बंती उसकी तरफ तेजी से दौड़ी। लगता था जैसे उसकी बर्दाश्त करने की शक्ति खत्म हो गई थी। वह मिसेज सिंह के बिलकुल करीब चली गई, फिर कुछ सोच कर पीछे हट गई। वे दोनों जो मुँह में आया, बोलती चली गईं। "आ मेरे बाप की कुछ लगती... हराम की मार... चगल... अपने आप को बड़ी सति-सावत्री समझती है... मुझे तुझसे क्या लेना... जब माँगने आई, बाँह पकड़कर बाहर निकाल देना। मैं तुझे भजन सिंह वाली बात याद करवाऊँ। याद है ना... सारी उम्र लोगों का गू-मूत उठाने वाली...।" क्वार्टरों की खिड़कियों, दरवाजों में खड़ी औरतें हँस-हँस कर चुन्नियाँ मुँह में लेने लगीं। कई यह कयास लगाने लगे थे कि क्या मिसेज सिंह बंती का मुकाबला कर भी सकेगी या नहीं।

शर्मा ने मुझे इशारा किया। हम दोनों नीचे उतर आए। लड़ाई हमारे क्वार्टरों से पचास फुट आगे चल रही थी।

"बंती के लड़के की शक्ल बिलकुल चोरों जैसी लगती है।" हमें पास आते देख तिवारी ने कहा।

"हो सकता है।" शर्मा ने इस बात की आधे मन से हामी भरी।

"शर्मा साहिब, तुम भी क्या बात कर रहे हो। हो सकता नहीं, है। तुम पूछो - कैसे? मैं सुबूत पेश कर सकता हूँ। बिलकुल ही खरे सुबूत।" तिवारी एक तरह से हमें रोककर ही खड़ा हो गया। मानो उसने अपनी बात मनवाने के लिए ढेर सारे सुबूत इकट्ठा किए हुए थे।

"कैसे?" अपने आप को रोकते-रोकते भी मेरे मुँह से निकल गया।

"तुम्हें पता होगा कि हमारे क्वार्टर के पीछे आँगन पड़ता है। उधर ही बाथरूम है। हम मियाँ-बीवी दफ़्तर चले जाते हैं। हमारे अंडर गारमेंट्स बाहर वाली तार पर ही टँगे रहते हैं। पहले कभी एक रुपये की चीज़ इधर-उधर नहीं हुई थी। पर अब आए दिन ये गायब होते हैं।" तिवारी अभी भी मेरी ओर सीधा ही देख रहा था। वह फिर बोला, "सारा बखेड़ा बंती के आने पर पड़ा। पता नहीं किस जात की है? ये देसा तो मुझे बाजीगरों का बीज लगता है। आँखों के फेर में बंदर की तरह सफेदों पर चढ़ जाता है। दीवार पर से छलाँग लगाता है। कभी अंदर, कभी बाहर। इसका शरीर स्प्रिंग की तरह ऊपर-नीचे होता है। शिकारी कुत्ते जैसी इसकी टाँगें हैं। बड़ा तेज दौड़ता है। मैंने खुद आजमा कर देखा है।

एक दिन जिंदर के लड़के की पतंग प्रोफेसर के कोठे पर जा गिरी। मैडम से डरता लड़का उनके घर की ओर मुँह न करे। संयोग से मैं पहुँच गया। मुझसे लड़के का हाल देखा न गया। लगता था कि अभी रोया, अभी रोया। मैंने देसे से कहा कि अगर तू इसकी पतंग उठा लाए तो मैं तुझे रुपया दूँगा। यह दो मिनट में पतंग ले आया।"

तभी सामने वाला जौड़ा आ गया। उसने तिवारी की बाँह को पकड़कर हल्का-सा दबाया, जिसका मतलब था कि अब तुम चुप करो। वह बोला, "पहली गलती अरोड़ा साहिब ने यह की कि कुजात को निचला पोर्शन दे दिया। सिर्फ़ अपने स्वार्थ के लिए। यही भाई कि यह उनकी बीमार माँ की सेवा करेगी। करवा ली इससे सेवा। फिर कमरा किराये पर देते वक्त यह तो देख लेते कि क्या बंदा अपने स्टेट्स का भी है। अब हम एक बात करें। उनसे रिक्वेस्ट करें कि भाई बंती को अपने क्वार्टर में से वो निकाल दें। फिर न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।"

"तुमने बहुत दूर की सोची।" शर्मा को उसकी तज़वीज़ भा गई थी।

मिसेज सिंह और बंती एक बार फिर हाथोपाई होते-होते बमुश्किल ही हटी थीं।

हम थोड़ा और आगे चले गए।

"बताओ वीर जी, मेरा देसराज आपको चोर लगता हे?" अब बंती मिसेज सिंह की ओर से हट कर मुझसे मुखातिब हुई।

"नहीं, बिलकुल नहीं। यह तो बीबा बच्चा है। ब्रीलियेंट ब्वॉय। तेज़ दिमाग वाला। यह कभी भी चोरी नहीं कर सकता।" मैंने कहा तो शर्मा और तिवारी दोनों ने मुझे घूरकर देखा। जौड़ा कभी मेरी ओर देख लेता, कभी बंती की ओर। मानो उसे मेरे से ऐसे व्यवहार की आस नहीं थी। वे सभी इसे आख़िरी सच माने बैठे थे। इस कालोनी में होती हरेक छोटी-मोटी चोरी में उन्हें इस लड़के का सीधा हाथ लगता था।

"तुम यह कहकर इसे न चढ़ाओ। तुम्हें इस लड़के की आदतों का पता नहीं।" विरदी साहब ने मेरे कान के पास मुँह लाकर कहा। मैं कह बैठा, "आपकी बात भी सच हो सकती है।"

दरअसल, उस समय मैंने कालोनी की बिरादरी की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने में ही अपना फ़ायदा समझा था।

मैंने बंती को अपने कमरे में जाने के लिए इशारा किया। उसने आगे कोई उज्र नहीं की। मिसेज सिंह की नज़रों में शक के डोरे उभरे। वह नथुने फैलाती दरवाजे में खड़ी बंती के कमरे की ओर देख रही थी। विजयी अंदाज में।

"चाय चलेगी?" जौड़ा ने अमन-शांति देखकर मेरे से पूछा।

"ज़रूर-ज़रूर।" शर्मा तुरंत बोला। मेरे 'ना-ना' करते हुए भी मेरी बाँह पकड़कर अंदर की ओर ले चला।

मिसेज जौड़ा बोली, "भाई साहब, यह पढ़े-लिखों की कालोनी है। मैनर्स के साथ ही बोलना, रहना अच्छा लगता है।"

"हाँ भाभी जी। बंती तो बोलते वक्त कोई आगा-पीछा भी नहीं देखती कि उसके पास कोई मर्द भी खड़ा है।" तिवारी बोला।

"इसका कोई पक्का उपाय करो न। एक उसका लड़का चोर, ऊपर से सीनाज़ोरी करती है। एक काम मैं कर सकती हूँ। जिस फैक्टरी में यह पियन लगी है, वहाँ मेरी एक कुलीग का ब्रदर लगा हुआ है। उससे रिक्वैस्ट करके इसे हटाती हूँ। आप अरोड़ा साहब के पास जाओ या फिर उन्हें यहाँ बुला लाओ।" मिसेज जौड़ा ने अपनी तज़वीज़ रखी।

सभी अरोड़ा साहब की ओर चल दिए।

"अरोड़ा साहब तो कहीं दिखते नहीं।" शर्मा ने जाकर पूछा।

"टूर पर गए होंगे। शाम को आ जाएँगे।"

"फिर शाम को सही।"

"ठीक।" कहते हुए सभी अपने अपने क्वार्टरों की ओर चल दिए। शर्मा ने अपने गेट के पास पहुँचते हुए फिर ताकीद की, "लद्धड़ साहब, कहीं जाना नहीं। हम आज इसका काँटा निकाल ही देंगे।"

सीढ़ियाँ चढ़ने लगा तो संतोष ने पूछा, "कर आए फ़ैसला?" मेरे जवाब देने से पहले ही वह फिर बोली, "कल बंती आई थी।"

"अच्छा," मैं नीचे आ गया।

"कहती थी, वीर जी को बताओ, ये सारी बाबूआनियाँ मेरे लड़के को देखकर खुश नहीं होती। एक बात और। इस बार भी देसराज अपनी क्लास में फर्स्ट आया है।"

"वैरी गुड।"

"कलप रही थी कि यही बात इन सबको चुभती है।"

"और चोरी?"

"मुझे स्वयं लड़का चोर लगता है।"

मैं कुछ भी ओर सुनने या कहने के मूड में नहीं था। मुझे उसका वीरजी कहना शंकित करने लगा। कालोनी के अधिकांश आदमियों को वह बाबूजी या सरदार जी कहकर बुलाती है। पर मुझे वीरजी क्यों? यह रहस्य मुझे आज तक समझ में नहीं आया था। वह भी सतलुज पार की है। कहीं उसे मेरी बिरादरी का पता तो नहीं लग गया? पर यह संभव नहीं हो सकता। मैंने तो अपनी सब-कास्ट की जगह गाँव का नाम लगा रखा है। मेरी जाति सिर्फ़ मेरी सर्विस बुक में दर्ज़ थी। जसविंदर की कास्ट वाला खाना भी उसकी मम्मी ने भरा था - जसविंदर गिल। मैंने इसका विरोध नहीं किया था। मुझे इसमें संतुष्टि मिली थी। संतोष ने उसे अपनी कास्ट दी थी। वह बेटा तो आख़िर मेरा है। यदि मुझे इसका शेड्यूल्ड कास्ट सर्टिफिकेट बनवाना पड़ा, मैं झट बनवा लूँगा।

अब इन लोगों के बीच रहते हुए मैंने अपने आप को अपर कास्ट के तौर पर स्थापित कर लिया है। इस कालोनी में पचासेक क्वार्टर्स हैं। हाउसिंग बोर्ड ने ये कालोनी बनाई है। अधिकांश लोगों ने ये क्वार्टर किस्तों पर लिए हैं। लगभग सभी सरकारी कर्मचारी हैं। बहुत से मियाँ-बीवी दोनों ही। दोपहर तक कालोनी में सन्नाटा पसरा रहता है। बच्चे स्कूल से लौटते हैं, शोर-शराबा करते हैं। शाम छह बजे तक ज़िंदगी लौट आती है या छुट्टी वाले दिन दिनभर चहल-पहल रहती है। इनमें एक साँझ है। हमदर्दी है। अपनत्व है। कोई आपस में लड़ता-झगड़ता नहीं। इनके पास लड़ने-झगड़ने का समय ही नहीं होता। सब अपने अपने दायरों में क़ैद हैं। सभी घरों में मेरा आना-जाना है। दुख-सुख की साँझ है।

बंती?

बंती का घरवाला किसी सरकारी दफ्तर में चपरासी लगा है। उसने बताया था कि उसकी ड्यूटी साहब की कोठी पर लगी है। इसलिए उसके जाने-आने या छुट्टी का कोई समय नहीं होता। उसे घर से निकलते-घुसते संयोग से ही देखा जाता है। उसे

आने-जाने की जल्दी मची रहती है। वह गर्दन झुकाए रखता है। उसे कभी किसी से बातें करते नहीं देखा। देसराज को बंती खुद साथ लाई थी। उसने बिना किसी संकोच के कहा था, "वीर जी, इसे किसी अच्छे माडल स्कूल में दाख़िल करवा दो।"

"तू बच्चे का इतना खर्च दे सकेगी?" हैरानगी से मैंने उलटा उससे सवाल किया था।

"हाँ।"

"तुझे पता है, वहाँ महीने का कितना खर्च आता है?"

"कितना होगा? अधिक से अधिक पाँच-सात सौ होगा। मेरे लिए यह कोई बड़ा खर्चा नहीं। हमारा एक ही बच्चा है। उसके खर्चे के लिए मैं अकेली कमा लूँगी।" उसने गर्व से कहा।

"तुझे संग चलना पड़ेगा।"

"लो, आप जो हो। फिर मुझे जाने की क्या ज़रूरत है।" वह अथाह विश्वास से बोली थी। मुझे 'हाँ' कहनी पड़ी थी। जसविंदर ने भी उसी स्कूल में एडमिशन लेना था। मैं जसविंदर के लिए लाया हुआ फॉर्म देस राज के लिए भरने लगा था। बीच में पूछा था, "तुम्हारी जात?"

"आपको नहीं पता? चमार।" कहते हुए उसके चेहरे पर आत्म-संतुष्टि के भाव उभरे थे।

बंती किसी छुट्टी वाले दिन आ जाती। मुझे उसका आना अच्छा लगता था। उसका आना क्या, देस राज का स्टैंडर्ड के स्कूल में पढ़ना भी। वह पढ़ाई में जसविंदर से बहुत आगे जा रहा था। जो बात जसविंदर को बार बार समझाने पर मुश्किल से समझ में आती, देसराज पहली बार में नहीं तो दूसरी बार में समझ लेता था। कालोनी के अन्य घरों की तरह मुझे उसका अस्तित्व अखरता नहीं था। मैं उसकी तेज़ बुद्धि की दाद देता। संतोष भी कहती थी कि वह मैरिट पर रहेगा। मैं उसकी बात पर गौर करता। कहीं यह व्यंग्य में तो नहीं कह रही। कहीं इसे भी उसके प्रति जलन तो नहीं हो रही। वह मेरे सामने उसकी जात को अच्छा-बुरा नहीं बोल सकती थी। चुप रहती थी। इन्हीं दिनों में मेरे मन में एक और विचार भारी होने लग पड़ा था कि जसविंदर के साथ साथ देसराज की भी ट्यूशन रखवा दूँ। इसका खर्चा खुद झेलूँ। पर संतोष ने इसके उलट अर्थ निकाल लेने थे। मैं किसी शक में उलझना नहीं चाहता था।

अब मैं फिर छत पर टहल रहा हूँ। मेरा ध्यान सरसों के फूलों की तरफ नहीं है। मैं सोचने की मुद्रा में हूँ। मुझे कालोनी की 'हाँ' में 'हाँ' मिलानी है। उनके हित में बोलना है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता।

नीचे से संतोष की आवाज़ आई। मैंने मुंडेर पर से ही नीचे झाँका। बंती खड़ी थी। अब यह क्या करने आई? इसे इस वक्त हमारे घर नहीं आना चाहिए था। अड़ोस-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे? सौ लोगों से मेरा लिहाज है। मुँह-मुलाहज़ा है। संतोष का मुँह बंती की ओर था। मैं चाहता था कि संतोष मेरी तरफ देखे तो मैं इशारा कर दूँ कि इसे शीघ्र दफ़ा करे। इसे कह दे - हमारे घर न आया कर। तभी आए जब हम इसे बुलाएँ।

"वीर जी..." बंती ने ऊपर मेरी ओर देखते हुए कहा।

मैंने खीझ कर उसकी तरफ देखा। एक पल के लिए वह डर गई। उसने मेरी नज़रों की इबारत पढ़ ली थी। फिर भी उसने पूछ ही लिया, "आप फैसला करो। क्या मेरा देसराज चोर लगता है?"

"नहीं, यह कभी चोरी नहीं कर सकता। कभी भी नहीं। इस पर अधिक बंदिशें मत लगा। जो करता है, करने दे। यह बड़ा आदमी बनेगा। यह मेरा विश्वास है। इसे अपने पास ही रखा कर। इसे बाहर न निकलने दिया कर। मैं तुझे फिर कहता हूँ... यह चोर नहीं।"

"पर बच्चे?" संतोष ने कहा।

"मेरा बच्चा ऐसा नहीं।"

"इसकी गवाही मैं भी भरता हूँ।"

मैंने संतोष से कहा, "तुम इसे चाय पिलाओ। सवेर की लड़ती थक गई होगी। मैं भी चाय लूँगा।" हल्का-फुलका होकर मैं पुनः छत पर टहलने लगा। अगले ही पल मुझे एक अन्य विचार ने आ दबोचा कि संतोष ने ऐसा जान-बूझकर तो नहीं कहा था। मैं उलझ चला था। तभी बंती मेरे लिए चाय का कप ले आई। मैंने उसे समझाया, "इन बाबुओं की औरतों से न डरा कर। ये उन कुत्तों जैसी हैं जो सिर्फ़ भौंका करते हैं। ये तेरा मुकाबला नहीं कर सकतीं। तू देसराज की ट्यूशन रखवा दे। उसी टीचर के पास जिसके पास जसविंदर पढ़ने जाता है। अगर तेरे पास पैसों की तंगी हुई तो घबराना मत। उसका खर्च मैं दूँगा। उसे पढ़ने से न हटाना। देखना, एक दिन यह गज़ेटिड अफ़सर बनेगा। जा, अब तू जल्दी से नीचे चली जा...।"

बंती संतोष के साथ बातों में लग गई। उसके संग अंदर-बाहर की सफ़ाई करवा गई।

तिवारी के घर से तीसरा संदेशा आ गया था। हर संदेश पर मैंने कहा था कि अभी आया। तीसरी बार उसका लड़का रूखा-सा बोला, "अंकल जी, अरोड़ा अंकल जी कब के आ चुके हैं। अब सिर्फ़ आपका ही इंतज़ार है।"

"चल, मैं आया।"

मैंने लोई लपेटी। संतोष ने टोका, "यह क्या अपना जुलूस निकालने लगे। कोई अच्छा लगता है?"

"मुझे कौन सा दूर जाना है।"

मेरे अंदर तेज़ कँपकँपी उठी। भयंकर कँपकँपी। यह मेरे काबू में नहीं आ रही। क्या मैं डर गया? दूसरे पल मेरे मन ने कहा कि इसमें डरने वाली कौन सी बला आ घुसी?

"अरोड़ा साहब मान गए।" मेरा एक पैर अभी तिवारी के ड्राइंग रूम के अंदर था और एक बाहर, जब करतार सिंह कह रहा था।

"क्या भाई?" जानते हुए भी मैंने पूछा।

"यही कि यह बंती से कमरा खाली करवा लेंगे। हम इन्हें दूसरा किरायेदार खोजकर देंगे जो सारा दिन घर पर रहे। ऐसा किरायेदार जो इनकी बीमार माँ की प्रोपर देखभाल कर सके।" तिवारी उत्साह में बताने लगा।

"वैरी गुड... वैरी गुड..." कहकर मैंने तालियाँ बजाईं। "तिवारी साहब, आज जश्न-वश्न हो जाए।"

"लो, आपने यह क्या बात की? मैं कभी पीछे हटा हूँ।" तिवारी कुर्सी पर से उठा। सभी के बीच आ खड़ा हुआ, "धन्य भाग मेरे मेरी शाम रंगीन हो गई। अंधा क्या माँगे, दो आँखें...।"

तिवारी रसोई में चला गया। आठ छोटे गिलास और एरिस्टोक्रेट की बातल ले आया। अरोड़ा साहब ने अपना वाला गिलास मेज़ के नीचे रख दिया। बोले, "मैंने तो कभी ली नहीं जी..."

सातों ने एक एक पैग ले लिया।

दूसरा पैग चढ़ाते ही शर्मा बोला, "ये चूहड़े-चमारों के बच्चे चोरी नहीं करेंगे तो क्या करेंगे?"

"चोरी तो ब्लॅड से ब्लॅड तक जाती है।" तिवारी ने कहा।

"इनके जीन्स चोरियों से भरे पड़े हैं। तुम चाहे कंप्यूटर में डालकर देख लो। कंप्यूटर कभी झूठ नहीं बोल सकता। खानदान यूँ ही तो नहीं परखे जाते हैं।" करतार सिंह लोर में आकर बोला।

"ऐसे दो चार और किरायेदार कालोनी में आ घुसे तो समझो हम सब गए।" जौड़ा बोला।

"बंती बड़ी चालू जनानी है।"

"साली कंजरी...।"

"हरामजादा देसा...।"

"ऐसों का कौन सा असली बाप होता है।"

"नहीं... नहीं... नहीं..." मेरे मुँह से चीख़ निकल गई। सभी मेरी तरफ हैरानी से देखने लगे। तिवारी ने मेरे चेहरे को ताड़ते हुए कहा, "लद्धड़ साहिब... आप तो सिर्फ़ दो पैग में ही हिल गए।"

आगे मुझसे बोला नहीं गया। मैं भावुक हो गया था। ऐसे समय भावुकता भोथरे गँडासे जितना असर कर सकती थी। ऐसी गलती मैं एक बार पहले भी कर चुका हूँ। मैं सँभला। कहा, "सॉरी... सरदार करतार सिंह जी... मैं आपकी अंडरस्टैंडिंग की दाद देता हूँ।"

मैंने बोतल उठा ली। पौना गिलास भर लिया। एक साँस में पी गया। रूमाल से होंठ पोंछे। गर्दन झुकाकर अंधाधुंध तालियाँ बजाने लगा।